निफ़ाक़ की क़िस्में

निफ़ाक़ एक ऐसी बीमारी है कि आदमी इसमें मुब्तला (लिप्त) रहते हुए भी इसका एह्सास नहीं कर पाता और आम तौर पर लोग इससे नावाक़िफ़ (अनभिज्ञ, अनजान) होते हैं। कई बार ऐसा भी होता है कि इन्सान निफ़ाक़ का शिकार होकर अपने आप को **मुफ़्सिद** (बिगाड़ पैदा करने वाला) समझने के बजाय **मुस्लिह** (इस्लाह करने वाला, सुधारवादी) समझने लगता है। शिर्क की तरह निफ़ाक़ की भी दो क़िस्में है; पहली निफ़ाक़े अकबर और दूसरी, निफ़ाक़े अस्ग़र।

निफ़ाक़े अकबर इन्सान को हमेशा के लिये जहन्नम के इन्तिहाई गहरे हिस्से में पहुँचा देता है। निफ़ाक़े अकबर का हामिल शख़्स मुसलमानों के सामने ज़ाहिरी तौर पर अल्लाह, उसके रसूलों, फ़रिश्तों, अल्लाह की किताबों और आख़िरत के दिन पर ईमान लाने का दावा करता है लेकिन हक़ीक़त में वो इससे बिल्कुल आरी (कोरा) होता है और ईमान की तमाम बुनियादों को झुठलाने वाला होता है। मुसलमान होने की सबसे पहली शर्त कलिम-ए-तय्यिबा, **'ला इलाहा इल्लल्लाह मुहम्मदुर्रसूलुल्लाह'** है, मुनाफ़िक़े-अकबर इसके दोनों हिस्सों के इन्कारी होता है। वो दिल से न तो अल्लाह की वह्दानियत का क़ायल होता है और न हज़रत मुहम्मद (ﷺ) की रिसालत का क़ायल होता है। ऐसे मुनाफ़िक़ीन जब मुसलमानों से मिलते हैं तो उनके सामने ईमान का इक़रार करते हैं और जब काफ़िरों-मुश्रिकों के पास जाते हैं तो उनके जैसा होने का ऐलान करते हैं।

निफ़ाक़े-अकबर की सिफ़त रखने वाले मुनाफ़िक़ इस्लाम का वफ़ादार होने, उसकी मदद करने और इस्लाम की दा'वत को आम करने का दावेदार बनते हैं हालांकि हक़ीक़त में ये लोग इस्लाम के सख़्त दुश्मन और इस्लाम के दुश्मन काफ़िरों व मुश्रिकों के दोस्त होते हैं और हमेशा उसके ख़िलाफ़ मक्र व फ़रेब और साज़िशें करते रहते हैं।

ये इतने चालाक होते हैं कि सीधा-सादा मुसलमान उन्हें इस्लामी ता'लीमात को फैलाने वाले और इस्लाहे-मुआशरा (समाज सुधार) में मसरूफ़ (व्यस्त) रहने वाले नेक व मुत्तक़ी इन्सान समझ लेता है हालांकि वो लोग जहालत (अज्ञानता, अंधविश्वास) और फ़साद फैलाने का काम कर रहे होते हैं।

मुनाफ़िक़ों की निशानियाँ

क़ुर्आन व सुन्नत में मुनाफ़िक़ों की कुछ निशानियों की जानकारी मिलती है जिनके ज़रिये ईमानी बसीरत रखने वाले लोग उनकी पहचान कर लेते हैं।

01. रियाकारी :

ये इन्सान की बदतरीन आदत है। मुनाफ़िक़ीन के दिल इख़्लास से ख़ाली होते हैं, उनके सारे काम लोगों को दिखाने के लिये होते हैं। इर्शादे बारी तआला है,

'जब ये नमाज़ के लिये उठते हैं तो कसमसाते हुए और सिर्फ़ लोगों को दिखाने की ख़ातिर उठते हैं और अल्लाह को कम ही याद करते हैं।'

(सूरह निसा : 142)

02. मौक़ा-परस्ती :

मुनाफ़िक़ों की मिषाल उस बकरी जैसी है जो दो रेवड़ों के बीच बेचैन रहती है जो कभी इधर तो कभी उधर भागती है और किसी एक गिरोह के साथ मुस्तक़िल मिजाज़ी (स्थिरचित्त) होकर नहीं रहती। इसी तरह मुनाफ़िक़ दो गिरोहों के बीच हैरान व परेशान रहता है। वो न इधर का होता है और न उधर का ही रहता है। वो हमेशा ये देखता है कि कौनसा गिरोह ज़्यादा ताक़तवर है जिसके साथ अपना ता'ल्लुक़ बढ़ाए। उनकी कैफ़ियत यूँ है,

'ये कुफ़्र व ईमान के बीच डाँवाडोल हैं, न पूरे उस तरफ़ हैं और न पूरे इस तरफ़ हैं। जिसे अल्लाह ने भटका दिया हो उसके लिये तुम कोई रास्ता नहीं पा सकते।' (सूरह निसा : 143)

03. घात में रहना :

मुनाफ़िक़ हमेशा मोमिनों को नुक़्सान पहुँचाने पर उतारू रहते हैं और इस इंतज़ार में रहते हैं कि कब उन पर मुसीबत आए? अगर मुसलमानों को अल्लाह की तरफ़ से कुशादगी (खुलापन, ख़ुशी की चीज़) हासिल होती है तो उनके पास लेने के लिये पहुँच जाते हैं और क़समें खा-खाकर यक़ीन दिलाने की कोशिश करते हैं कि हम तुम्हारे साथ थे। ख़ुदा न ख़्वास्ता मुसलमानों की हार होती है और उनके दुश्मनों की जीत होती है तो वे